मानव के साथ खतरे में पशु-पक्षियों का जीवन

नरेंद्र देवांगन

कहा जा रहा है कि हम जीवों की महाविलुप्ति के दौर से गुजर रहे हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है हर साल पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों और पेड़-पौधों की कम से कम सौ प्रजातियां हमेशा के लिए हमसे बिछुड़ जाया करेंगी। साथ ही वे चेतावनी देते हैं कि जिन कारणों से तेज़ी से जीवों की विलुप्ति हो रही है, वही कारण धीरे-धीरे पृथ्वी को मानव जाति के आवास लायक नहीं रहने देंगी।

वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर हम आर्थिक विकास या अंधाधुंध प्रकृति का विनाश तथा पर्यावरण की रक्षा के बीच एक सही फैसला लेने में देर कर देते हैं, तो मानव जाति की इस नियति को शायद टाला नहीं जा सकेगा।

संसार भर के राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र के कई महारथी वैज्ञानिकों की इस चेतावनी को खास महत्व नहीं देते हैं। कुछ का कहना है कि विश्व के भविष्य की यह भयावह तस्वीर सिर्फ आंकड़ों और सिद्धांतों की उपज है, वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होने जा रहा है। कई लोग यह तर्क देते हैं कि विलुप्ति से हमें घबराना नहीं चाहिए। जीवों की विलुप्ति तो प्रकृति के विकास का नियम है। मानव के धरती पर आने से पहले भी ढेर सारे जीव खत्म हुए हैं। डायनासौर भी आखिर एक झटके में संसार भर से मिट गए थे। फिर भी धरती बनी रही और जीवन फलता-फूलता रहा।

यह सही है कि धरती पर जीवन के लगभग चार अरब सालों के इतिहास में कई बार जीवों पर अस्तित्व के गंभीर संकट पैदा हुए हैं। ऐसे ही एक संकट के दौरान डायनासौर खत्म हुए। पर उन प्राकृतिक विलुप्तियों और आज के पर्यावरण के संकट के बीच कई बुनियादी भिन्नताएं है। प्रकृति में जीवों का विकास तभी होता है जब किसी प्राकृतिक उथल-पुथल या मौसम में भारी बदलाव के दौरान कुछ अयोग्य प्रजातियां नई परिस्थिति में खत्म हो जाती हैं। तब अन्य प्रजातियां उनके द्वारा खाली किए गए स्थान को भरती हैं। उल्का पिंडों की चोट या मौसम में आए बदलाव के कारण डायनासौर जब खत्म हुए तो उनसे रिक्त हुए हर स्थान को स्तनपायी वर्ग के विभिन्न प्राणियों ने भर दिया। कहा जाता है कि सभी डायनासौर एकाएक खत्म हुए थे, पर आज की विलुप्तियों के मुकाबले में देखा जाए तो उनका खात्मा एक लंबे समय के दौरान हुआ। जीवाश्मों के अध्ययन से पता चलता है कि डायनासौर की विलुप्ति की औसत दर एक हज़ार वर्ष में एक प्रजाति से अधिक नहीं रही।

प्रकृति में नई प्रजातियों का विकास काफी लंबे समय में होता है। पिछले एक हज़ार वर्षों के दौरान जीवन की एक हज़ार से अधिक प्रजातियां विलुप्ति हुई हैं। इस दौर की विलुप्तियों में खास बात यह है कि इन सभी जीवों का खात्मा सिर्फ एक प्राणी, मानव की तथाकथित सफलता के एवज में हुआ। हालांकि पिछले तीन सौ सालों के दौरान औज़ारों और टेक्नॉलॉजी के अभूतपूर्व विकास के कारण इंसान ने धरती के लगभग हर हिस्से को अपनी आर्थिक गतिविधियों की चपेट में ले लिया है और इस दौरान पर्यावरण के विनाश और जीवों की विलुप्ति की दर में तेज़ी से वृद्धि हुई है। पर हाल के अध्ययन बताते हैं कि प्रागैतिहासिक काल से ही जहां-जहां मानव के कदम पड़े वहां प्रकृति और प्रजातियों का विनाश शुरू हो गया।

लगभग तीस-चालीस हज़ार साल पहले मानव तकनीकी रूप से इतना विकसित हो चुका था कि वह अफ्रीका और एशिया के कुछ चुने हुए क्षेत्रों से बाहर निकलकर दूर नए इलाकों में बसने लगा। दक्षिणी फ्रांस और स्पेन में मिले क्रो-मैग्नन मानव द्वारा बनाए गए गुफा चित्रों से पता चलता है कि 25 हज़ार वर्ष पहले युरोप में इंसान और विशाल शेर, प्रागैतिहासिक बायसन, चीता, भालू, शुतुरमुर्ग, ज़ेबरा, कई तरह के जंगली घोड़े, रोंएदार गैंडा और महादंत हाथी (मैमथ) सभी एक साथ रहते थे। आधुनिक मानव ने युरोप में उन्हें कभी नहीं देखा। आज से लगभग दस-पंद्रह हज़ार वर्ष

पहले हिमयुग के खात्मे के साथ-साथ उनका भी खात्मा हो गया। अब तक मौसम का बदलाव ही उनकी विलुप्ति का कारण समझा जाता था। पर पच्चीस लाख वर्ष के हिमयुग के दौरान धरती कम से कम बीस बार गर्म हुई। तब ये जीव खत्म क्यों नहीं हुए?

नवीन पुरातात्विक खोजें मौसम के बदलाव के साथ-साथ मानव की आर्थिक गतिविधियों को भी उन पशुओं की विलुप्ति के लिए जिम्मेदार ठहराती हैं। आदमी के पहुंचने के पहले जब भी मौसम गर्म हुआ, ये जीव उत्तर में ठंडे प्रदेशों की ओर चले गए। पर जब लोगों ने टुंड्रा प्रदेशों तक अपना डेरा जमा लिया और वहां की प्रकृति को बदलना शुरू कर दिया, तब इन पशुओं को दक्षिण के सीमित इलाके में ही रहकर मौसम की मार सहनी पड़ी। औज़ारों का विकास और जनसंख्या वृद्धि के कारण अब अधिक पशु शिकार में भी मारे जाने लगे और वे धीरे-धीरे खत्म हो गए।

इसी तरह उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में भी आदमी के पहुंचने के बाद ही जीवों की विलुप्ति का एक अभूतपूर्व सिलसिला शुरू हो गया। हिमयुग के दौरान समुद्र का काफी सारा पानी बर्फ के रूप में जमे रहने के कारण समुद्र का तल आज से काफी नीचा था। उस समय अलास्का (उत्तरी अमेरिका) और साइबेरिया के बीच समुद्र नहीं था। दोनों क्षेत्र एक ज़मीनी पुल द्वारा जुड़े हुए थे। सुदूर पूर्व के लोग सबसे पहले इसी पुल से होकर अमेरिका पहुंचे, जो बाद में इंडियन कहलाए। पशु-पक्षियों के मामलों में उस समय के अमेरिका की तुलना मध्य अफ्रीका के जंगल और सवाना से की जा सकती है। चीता, शेर, बड़े-बड़े रीछ, ज़ेबरा, याक, तापिर, लंबे दांतों वाला बाघ, तरह-तरह के छोटे-बड़े हाथी, ऊंट और जंगली घोड़ा, ये सभी पिछले दस-पंद्रह हज़ार साल पहले अमेरिकी महादेशों से खत्म हो गए। इस दौरान उत्तरी अमेरिका में बड़े पशुओं के कुल 33 वंश और दक्षिणी अमेरिका में 46 वंश विलुप्त हो गए।

संसार भर में कहीं भी इतने कम समय में इतनी सारी प्रजातियां एक साथ खत्म नहीं हुई। हालांकि इन विलुप्तियों में इन्सान की भूमिका कितनी थी और मौसम के बदलाव की कितनी, यह स्पष्ट रूप से कहना संभव नहीं। पर जीवाश्मों के अध्ययन और हाल में खोजे गए पुरावशेषों से यही पता चलता है कि अमेरिकी महादेशों में जैसे-जैसे इन्सान उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ता गया वैसे-वैसे उन इलाकों में विलुप्ति की दर तेज़ होती गई।

ये तो रही महाद्वीपों की बात। समुद्र के बीच में अलग-अलग द्वीपों में मानव द्वारा पशु-पक्षियों की विलुप्ति की कहानी और भी रोंगटे खड़े कर देने वाली है। प्रशांत महासागर तथा समुद्रों के बीच ऐसे अनेक छोटे-बड़े द्वीप हैं जिनका निर्माण ज्वालामुखियों के फटने से हुआ और जो कभी भी किसी महाद्वीप का हिस्सा नहीं थे। इन द्वीपों में प्रकृति का ताना-बाना बहुत ही नाज़ुक है जिसमें थोड़ा भी उलटफेर विनाश का कारण बन सकता है। साथ ही हरेक द्वीप की इकॉलॉजी अपने आप में अनूठी है। इन द्वीपों पर जीव तैरकर, उड़कर या समुद्र में तैरते मलबे के साथ बहकर वहां पहुंचे। इसीलिए इन द्वीपों पर बड़े चौपाए लगभग नहीं मिलते और पक्षी तथा सरीसृप अधिक संख्या में पाए जाते हैं। द्वीपों पर पहुंचने के बाद उन जीवों में भिन्नताएं विकसित हुईं और वहां के विशिष्ट वातावरण पर वे निर्भर होते चले गए।

स्तनधारियों के अभाव में सरीसृपों ने उनकी खाली जगह को भरते हुए विशाल आकार धारण कर लिया। जैसे गैलापेगोस का विशाल कछुआ और इंडोनेशिया के कोमोडो द्वीप का ड्रेगन। इसी तरह मॉरिशस के डोडो के समान कई पक्षियों ने उड़ना छोड़ दिया। इन द्वीपों पर मनुष्य का सबसे ज़्यादा कुप्रभाव पक्षियों पर ही पड़ा। हालांकि पक्षियों की हड्डियां नरम होने के कारण उनके अवशेष बहुत कम बचे रह जाते हैं, फिर भी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर वैज्ञानिक अनुमान लगाते हैं कि पिछले एक हज़ार वर्षों के दौरान प्रशांत महासागर के द्वीपों में पक्षियों की कम से कम दो हज़ार प्रजातियां मनुष्य द्वारा खत्म कर दी गईं। आज संसार भर में पक्षियों की करीब दस हज़ार प्रजातियां बची हुई हैं, जो वनों के विकास और प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जिस गति से उनका और उनके पर्यावरण का विनाश होता रहा है उसे देखते हुए यह कहना मुश्किल है कि अगली सदी के मध्य तक दुनिया भर

में कितने पक्षी बच पाएंगे।

इस आशंका को गंभीरता से न लेने वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में उत्तरी अमेरिका में अरबों की संख्या में पाए जाने वाले पक्षी सफरी कपोत (पैसेंजर पीजन) का इंसान द्वारा पूरी तरह से सफाया कर दिया था। इसी प्रकार संसार भर में सबसे अधिक संख्या में पाए जाने वाले चौपाए अमेरिकी बायसन को कुछ ही वर्षों के अंदर खत्म कर दिया गया।

समुद्री द्वीपों में पशु-पक्षियों की विलुप्ति में शिकार और जंगल में आग लगाकर खेती के अलावा मनुष्य द्वारा मुख्य भूमि से वहां लाए कुत्ते, बिल्ली, चूहा, सूअर, खरगोश और नेवला जैसे पशुओं ने भी अहम भूमिका निभाई। आदिम पॉलिनेशियाई लोगों द्वारा ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, हवाई और अन्य द्वीपों पर लाए गए इन पशुओं के स्थानीय पर्यावरण पर पड़े भयावह परिणामों को जानने के बाद भी आधुनिक काल तक यह सिलसिला जारी रहा। ऑस्ट्रेलिया में बाहर से लाए गए डिंगो कुत्ते ने वहां के कई अद्‌भुत मार्सुपियल्स को खत्म कर दिया। क्यूबा और हाइथी द्वीपों में मनुष्य के साथ सबसे पहले पहुंचा चूहा। इन चूहों ने पक्षियों के अंडों और चूज़ों पर दांत साफ किए। जब चूहों का प्रकोप बहुत बढ़ गया तो उनका दमन करने के लिए नेवलों को लाया गया। पर नेवले उनकी तरफ ध्यान न देकर कई स्थानीय पशु-पक्षियों को चट करने में जुट गए।

निश्चित तौर पर मनुष्य का अपने जन्म काल से प्रकृति के साथ अंतर्विरोध रहा है। दरअसल मानव दूसरे जीवों से इसी मामले में अलग है कि वह अन्य पशुओं की तरह सिर्फ प्रकृति के अनुरूप अपने को नहीं ढालता है। खुद की ज़रूरत के मुताबिक वह प्रकृति को बदलता है, उसमें तोड़-मरोड़ करता है।

हाल के दिनों में विकास के साथ-साथ यह प्रवृत्ति अपनी चरम पर पहुंच चुकी है। पर मुसीबत यह है कि जिस प्रकृति से लड़कर और उसे वश में करके हम पशु से इन्सान बने और आज सर्वशक्तिमान होने का दावा कर रहे हैं, उसी प्रकृति का हम एक अभिन्न हिस्सा भी हैं। उसे बरबाद करके मानव खुद ज़िंदा नहीं रह सकता है। एक और मामले में हम पशुओं से भिन्न हैं कि अपनी प्रवृत्ति के खिलाफ भी मानव सचेतन प्रयास कर सकता है। शायद प्रकृति के साथ हमारे अन्याय का घड़ा अभी पूरी तरह से भरा नहीं है। अगर पक्का इरादा हो तो उसे फूटने से अभी भी हम बचा सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***